# तीसरी चिट्ठी

हिन्दी ADDA

प्रेमपाल शर्मा

# तीसरी चिट्ठी

https://www.hindiadda.com/tisari-chitthi/

आज उसका दूसरा पत्र आया है। एकदम वही बातें। बल्कि कुछ और विस्तार में, याचना से और अधिक लदी हुई। इसके अलावा - 'आप पत्र का जवाब तो अवश्य ही शीघ्रातिशीघ्र दें। पिताजी तो स्वयं जाने को कह रहे हैं पर उनकी तबियत इतनी खराब चल रही है कि ऐसे मौके पर उनको अकेले नहीं छोड़ा जा सकता ...आप अपने ऑफिस का पता भी अवश्य लिख देना। पिताजी आप सभी को आशीर्वाद कहते हैं। मेरा आपको व दीदी को चरणस्पर्श। आपका आज्ञाकारी सुशील।

पुनश्च : कृपया पत्र का उत्तर अवश्य दें, जिससे मुझे यह पता चल सके कि पता सही है।'

पत्र मैंने पढ़ा और ज्यों का त्यों तह बनाकर मेज पर रख दिया। दफ्तर से आते ही किसी और जिम्मेदारी से मानो बचने का मौका ढूँढ़ रहा हूँ।

पहला पत्र आए अभी 20 दिन ही हुए होंगे कि दूसरा भी आ गया। क्या जवाब दूँ? बेचारा रोज आस लगाता होगा - आज कुछ आए - कल कुछ आए। कुछ तो लिख ही देना चाहिए था। यही लिख देता कि तुम्हारा पत्र मिल गया है, पूरी कोशिश कर रहा हूँ। ईश्वर ने चाहा तो जल्दी ही काम बन जाएगा।

बीस दिन पता नहीं कब निकल गए। पिछला पत्र जब आया था तो अगले दिन ही कोहली साहब से पूछना था पर ऐसी मारा-मारी रहती है कि बात दिमाग से कब रपट गई, कुछ पता ही नहीं चला। ये फाइल, ये पार्लियामेंट क्वेश्चयन, यहाँ मीटिंग, वहाँ भागो तो कभी बॉस का ब्लड प्रेशर रोकने में अपना हाई होने लगता है। दफ्तर जाओ तो मानो किसी अँधेरी सुरंग में घुस गए हों। टायलेट तक जाना याद नहीं रहता। कल तो जरूर कोहली से पूछूँगा या खुद जाऊँगा - उसके किसी साले-वाले ने रोहतक रोड पर कोई फैक्टरी लगाई है। बी.ए. तो शायद सुशील है ही। या ऐसा करता हूँ, इधर कोहली के कान में डाल देता हूँ और उधर, उसे चिट्ठी डालकर सारी योग्यता-सब्जेक्ट आदि पूछ लेता हूँ।

पूछने को तो अग्रवाल से भी पूछा जा सकता है पर वो शायद ही हाथ रखने दे। एक बार वैसे उसने स्वयं कहा था कि कोई आदमी बताओ - अंग्रेजी में साइन-वाइन कर लेता हो - पर हो विश्वसनीय, ईमानदार - जो चारों और नजर रख सके। तब दिमाग में आया ही नहीं। 'क्यों मणि पूछूँ वार्ष्णेय से?'

'आपकी मर्जी है। उसका रिजर्वेशन हो गया था उस दिन?'

'चार में से एक बर्थ मिल गई थी। पर मुझे उससे पूछने में बड़ी झिझक लगती है- बड़ा काइयाँ-सा है वह। साला इधर-उधर गाता फिरेगा कि मैंने ये किया और वो किया। पैसे की बात भी खोलकर नहीं कह सकते।'

'कुछ दिन काम करेगा तो पैसे भी ठीक दे ही देगा। पहले पता तो करो क्या पोजिशन है। नहीं, मैं कर लूँगी पैसे की बात तो, हँसी-हँसी में पूछ लूँगी मैं।'

'ठीक है। पर उसकी फरमाइशों के लिए भी तैयार रहना। आज मेरे साले की टिकट ले आना। शिमला जाओ तो एक अपनी-सी जर्सी मुझे भी और पैसे के नाम पर चुप्पी। तुम भी फिर टुर-टुर करती फिरोगी।'

'तो क्या हो गया। आज के जमाने में यह सब तो करना ही पड़ता है। अपना कोई काम अटका होता तो नहीं करते यह सब। उस बेचारे का काम हो जाए बस। सचमुच रोना आता है, उसकी चिट्ठी पढ़कर। उसकी पत्नी तो आपने देखी ही है। शादी को अभी 3 साल हुए होंगे मुश्किल से, पर वो 45 की सी लगती है। उसका लड़का दो साल का था, जब आपने देखा था। बेचारा चल भी नहीं पाता था। दया आती है उसकी हालत देखकर। क्यों जी, आपके दफ्तर में नहीं है कोई नौकरी, चपरासी-वपरासी की।'

'ऐसा होता तो कभी का लगा दिया होता। हमारे यहाँ सब ए-टू-जेड एंप्लायमेंट एक्सचेंज से आते हैं।'

'पता नहीं कैसा दफ्तर है आपका? हमारे गाँव के एक आदमी ने कुछ कम नहीं तो 20 आदमी लगा दिए अब तक, टेलीफोन में। कहने को वह सुपरवाइजर है बस।'

'पता है मुझे। सब गड्ढे खोदते हैं, डेली वेजज में। इससे तो वे गाँव में भले थे बेचारे।' मैं अपनी हार को टालने को कोशिश करता हूँ, 'फिर टेलीफोन और रेलवे एक चीज नहीं है। हमारे यहाँ अनट्रेड एक भी नहीं रखा जा सकता।'

मणि अपने काम में मशगूल हो गई है। मैंने अखबार खींच लिया है। तीसरा पेज-25 वर्षीय युवक द्वारा आत्म-हत्या। कहा जाता है कि उसने बेरोजगारी से तंग आकर अपनी जान दे दी। बेरोजगारों को विदेश भेजने के नाम पर लूटने वालों का सरगना गिरफ्तार। आखिर इतनी नौकरी भी कहाँ से आए?

पता नहीं ये लोग कैसे लगा लेते हैं। हर जगह टैस्ट होता है। इंटरव्यू होता है - मेरा-तेरा आदमी कैसे लग जाएगा। जो टैस्ट में पास होगा, वही तो लगेगा और उसी को लगना भी चाहिए। उसे लिखे देता हूँ - जैसे ही कोई जगह निकलेगी, मैं फार्म भेज दूँगा।

मेहनत से पढ़ना शुरू कर दो। जिस किसी किताब की जरूरत हो तो मुझे लिखना। मेहनती आदमी को अभी भी कोई नहीं रोक सकता आदि-आदि।

फिर भी कुछ तो लगते ही हैं, इस-उस के सहारे। उस दिन वह कह रहा था कि चाचाजी ने बस कच्चों में रखवा दिया था। फिर टैस्ट में निकलवा दिया। कैसे निकलवा दिया? पता नहीं कहाँ हेरा-फेरी करते हैं ये लोग? नौकरी लगाना कोई हँसी-ठट्ठा तो नहीं है।

वैसे मई के महीने में हमारे यहाँ भी वाटरमैन रखे जाते हैं - उन्हीं में से धीरे-धीरे कोई तो चपरासी और क्लर्क भी हो गए हैं। पिछले वर्ष मेरा बॉस भी चयन-बोर्ड में बैठा था। क्या पता, इस बार भी बैठे। उससे पूछूँ - पर क्या कहूँगा कि दूर का जानने वाला है। रिलेटिव कहता ही नहीं हूँ। वो सोचेगा इसके रिलेटिव ऐसे हैं। अभी तो मैंने यही बताया है कि मेरा एक साला अरुणाचल में कमिश्नर है और दूसरा एम.बी.बी.एस. कर रहा है। महाराष्ट्र फाउंडर लिमिटेड मेरे फूफाजी की है और उसमें 200-300 लोग काम करते हैं। नहीं-नहीं कह दूँगा कि सिर्फ थोड़ी जान-पहचान है। पर इसे वो सीरियसली नहीं लेगा। कहूँ भी और कोई फायदा भी नहीं निकले तो क्या फायदा।

मि. वर्मा से कहता हूँ। उसका बैठना तो हर साल का रूटीन है। पर वो मेरे डिप्टी सेक्रेटरी से बोल देंगे कि आपके अंडर सेक्रेटरी का आदमी है। इससे उसे और भी बुरा लग सकता है कि सीधे-सीधे मुझे क्यों नहीं कहा। खैर, इस पचड़े में पड़ता ही नहीं हूँ। अपने दफ्तर में लग जाए तो हजार टेंशन - ये बात न पता लगे - वो बात न लगे। एक न एक दिन उसे मेरे स्टेनो के मामले का पता लग गया तो?

'क्यों आज मुँह-हाथ कुछ नहीं धोना?' मणि सलाद काटती हुई पास ही आकर खड़ी हो गई, 'क्या मिल गया अखबार में आज ऐसा।'

'कुछ नहीं। मैं सुशील के बारे में सोच रहा हूँ। किससे कहा जाए? बेचारा रोज इंतजार करता होगा - है ना? ये लोग समझते हैं कि जैसे जीजाजी के हाथ में ही सब कुछ...। इन्हें कौन समझाए कि ऐसी धाँधली कहीं नहीं मची हुई कि जिसे चाहो रखवा दो। होगी भी तो यू.पी., बिहार में।'

'तुम्हारा सर्किल भी तो काफी बड़ा है। बात तो किया करो इधर-उधर। पूछोगे तो हो नहीं किसी से, अपनी उधेड़-बुन करते रहोगे। वो ऐसा है, वो ऐसा था। काम निकालने के लिए गधे को भी बाप बनाते हैं लोग। एक बार कहीं चिपक जाए फिर आदमी रफ्तार बना ही लेता है। दिनेश भैया तो आजकल आए हुए हैं, उनसे मेरी ओर से पूछ कर देखो।'

'उसी के पास जाता हूँ। अभी चला जाऊँ तो कैसा रहे। वो एक-दो दिन के लिए ही आया है। आजकल वह डिप्टी कमिश्नर हिसार है।'

'फिर तो उनके लिए कोई मुश्किल नहीं है। राजा होता है, डी.सी. अपने इलाके का।' - कहते हुए वह रसोई में लौट गई।

मैंने डायरी से दिनेश के घर का पता नोट किया और कोट की जेब में डाल दिया।

'यार तेरा तो इतना बड़ा क्षेत्र है, जिससे भी कहेगा, क्या मजाल कि कोई ना कर दे।'

'नहीं-नहीं यार। बात यह नहीं है तिवारी। दूर से सब ऐसा ही लगता है। अब सरकारी नौकरी और वह भी स्टेट की, इतनी आसान नहीं रही। आए दिन विजिलैंस के छापे पड़ते रहते हैं और कब कौन किस में फाँस दे पता नहीं लगता। और ये अखबार वाले तो जैसे इसी ताक में रहते हैं।'

'किसी में भी लगवा दे। एग्रीकल्चर, हारटीकल्चर, कल्चर, कैनाल जहाँ लग सके। मणि ने इस्पेशली तुमसे कहने को कहा है।'

'यार अगर बुरा न मानो तो पर्टीकुलर्स छोड़ जाओ। मैं पूरी कोशिश करूँगा। इस समय मैं जल्दी में हूँ। हैदराबाद के लिए फ्लाइट **8.25** की है।' उसने घड़ी देखी और उठ खड़ा हुआ, 'बुलबुल! ये मेरे बहुत पुराने मित्र हैं तिवारी जी। ये बिना नाश्ता किए नहीं जाने पाएँ।'

मैंने पर्टीकुलर्स उसकी बुलबुल को दे दिए। उसने शाल में जरा-सा पंजा निकालकर कागज ले लिया।

'छोड़ जाओ मैं भिजवा दूँगी। तीन महीने तो ये अब ट्रेनिंग पर हैदराबाद ही रहेंगे। उसके बाद ही शायद कुछ कर पाएँ।'

उस आवाज में मौसम से भी ज्यादा सर्दी थी।

'आप प्लीज याद दिलाती रहना। इसकी नौकरी लग जाए तो जिंदगी भर आपको याद रखेगा।'

'मैं आहिस्ता से नमस्कार करके वापस हो लिया। गेट की सिटकनी लगाते हुए बस इतनी-सी आवाज कानों को छू गई, एक दिन को भी साहब आएँ तो नौकरी वाले चैन

नहीं लेने देते। जाने कहाँ-कहाँ से आ धमकेंगे, खुफिया पुलिस की तरह - जैसे साहब के पास कोई टकसाल हो नौकरी की। इन्हें नौकरी भी दो और चाय भी पिलाओ।'

दिसंबर की ठंडी हवा के बावजूद भी मेरी शिराओं में गर्माहट महसूस हो उठी है। मैं क्यों आया यहाँ? - लगे, नहीं तो नहीं लगे, मेरी बला से। 'हुँअ डी.सी. की घरवाली होगी अपने लिए।' मेरे दिमाग की फाइल बिखर गई है।

**15** वर्ष पहले। बी.एस.सी. किए हुए दो साल हो गए थे। नौकरी के नाम पर कुछ टैस्टों की तारीखें बस। सरकारी नौकरी ही क्यों, हर नौकरी मुझे औरंगजेब की सूबेदारी नजर आती। दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में जब श्याम बाबू ने बताया कि उसकी पत्नी भी पूरे 500 की नौकरी करती हैं तो मुझे वो किसी पैगंबर-सा लगने लगा था। मैं जब भी उससे मिलता कुछ न कुछ नौकरी के बारे में सलाह-मशवरा जरूर करता।

गर्दिश के इन्हीं दिनों में एक दिन जीजाजी आए और मुझे अपने किन्हीं परिचितों के पास ले गए। रास्ते भर वे ये बताते रहे कि वे कितने मिलनसार आदमी हैं और कैसे आज बढ़ते-बढ़ते सैक्शन ऑफिसर-गजेटिड ऑफिसर हैं। 'देखना तुम। घमंड तो उन्हें छू भर नहीं गया। पिछली बार मैं जब आया था, पड़ोस के बच्चों के साथ क्रिकेट खेल रहे थे। अपनी बहुत कद्र करते हैं।'

'भई आप मिलते रहिए - या फोन कर लिया। फोन नंबर नोट कर लो।' उन्होंने चाय खत्म होते ही कैंचीनुमा वाक्य छोड़ा -

'फोन तो मैं...' कहने वाला ही था कि जीजाजी ने बात छीन ली, 'खुद मिल लिया करेगा। इसे ही क्या करना होता है दिन भर। आपसे मिलता-जुलता रहेगा तो कुछ सीखेगा ही।'

'ठीक है' मैंने नतमस्तक हो स्वीकार किया।

मैं दफ्तर में पहुँचते ही उनके पैर छूता और उनके आदेश के इंतजार में खड़ा रहता। पहली बार तो उन्होंने दो मिनट के लिए समाचार लिए-दिए थे उसके बाद...। उन दिनों की बात सोचकर मेरा मन कसैला हो आया।

मैं पैर छूकर खड़ा हो गया हूँ और वे बिना कुछ पूछे कोई पेपर हाथ में लिए बाहर चले गए हैं। मैं घंटों इधर-उधर ताकता रहता - कॉरिडोर-टायलेट सब जगह। टायलेट में जाता तो उसकी दीवारें पढ़कर समय गुजरता - दूर से लगता अब आएँ - अब आएँ। कितनी ही बार ऐसा हुआ कि वे नहीं आते और उनके कर्मचारी मुझे डाँटकर बाहर कर

देते, 'जब वे आएँ तभी कमरे में घुसना। काम बोलो क्या काम है?' मेरा चेहरा निर्जीव हो जाता।

वे हर बार मुझसे अर्जियाँ लेते और कहते कि मैंने उन्हें आगे दे दिया है। वे खटपट अपनी मेज की दराज खोलते - यह जताने के लिए कि मैंने बड़े ध्यान से रखी हुई हैं और कि मुझे हर समय याद रहता है। पर अगले ही पल सच्चाई उगल जाते कि मैं रखकर भूल गया हूँ, तुम दूसरी दे जाना।

मैं दूसरी एप्लीकेशन अगले दिन सुबह ही दे आता।

मुझे उन दिनों कोफ्त नहीं होती थी। भिखारी को गुस्सा शायद इसीलिए नहीं आता। मुझे अंग्रेजी की टाइप आती थी। उनके यह कहने पर कि 'हिंदी की आती तो मैं जरूर लगवा देता।' मैंने हिंदी की भी सीख ली। हाँ, उनकी कहीं एक शर्त मैंने पूरी नहीं कि, 'यदि तुम बी.काम. होते तो तुम्हारी नौकरी लगाना बाएँ हाथ का खेल था।' पर क्या करूँ तुमने बी.एस.सी. किया है। उस दिन बस इसी बात पर काम बनते-बनते बिगड़ गया। फिर भी पूरी कोशिश कर रहा हूँ।

काश! वे ईमानदारी से कह देते कि मैं कुछ भी नहीं कर रहा, न ही कुछ कर पाऊँगा।

तो क्या मैं सुशील को यही लिख दूँ कि भाई मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। हर जगह योग्यता चाहिए। टैस्ट में पास होकर ही नौकरी लगेगी और यह कि मैं झूठे आश्वासन देकर आपका वक्त जाया नहीं करना चाहता। झूठे वायदों के लिए नेता ही बहुत हैं।

पर यह बात तुम तब भी कह सकते थे जब उसके बूढ़े पिता ने याचना भरे हाथों से तुम्हारे हाथ को चूमा था और सुशील ने झटपट पैर छू लिए थे। किसी ने तुम्हारा परिचय दुहराया था 'यह हैं आनंद मोहन तिवारी, अंडर सेक्रेटरी, रेल मंत्रालय। ये डिप्टी कलेक्टर के बराबर होते हैं। इस गाँव के धन्य भाग जो इनके कदम यहाँ पड़े।' और तुमने लोगों के चेहरों पर अपने लिए उपजे सम्मान को देखकर कबूतर की तरह आँखें मूँद ली थीं।

'कोई बात नहीं बाबाजी, इसे बी.ए. करते ही मेरे पास भेज देना। आखिरी साल है न तुम्हारा।' मैंने सुशील से पूछा, 'या तो सीधे आ जाना या पहले चिट्ठी डालकर पूछ लेना।'

बूढ़े पिता की आँखों में संतोष की कैसी छाया समा गई थी। उनके मुख से आशीर्वाद की झड़ी लग गई।

अब दो साल बाद उसका पत्र आया है और तुमने एक बार फिर कबूतर की तरह आँखें बंद कर ली हैं।

मेरी पत्नी ठीक ही कहती है। क्या हो तुम? बस अंडर सेक्रेटरी! कोई क्या चाटे इसे। तुम किसी का इतना-सा भी काम नहीं करा सकते। दूसरों को छोड़ो अपना ही नहीं करा सकते। उस दिन राशन दफ्तर भेजा था, बच्चे का नाम जुड़वाने के लिए, उसने मना कर दिया तो चुप आकर बैठ गए। वर्मा को देखो - राशन इंस्पेक्टर, घर आकर उसके भतीजे का नाम कार्ड में जोड़ गया। यहाँ अपना बेटा अपने कार्ड में ही नहीं है। दीवाली पर देखे हैं - कितने डिब्बे आते हैं उसके, मिठाइयों के। तुम तो उल्टे दो-चार किसी को खरीदकर देते हो। बस एक-दो किताब पढ़ ली तो समझते हो कि मेरा जैसा विद्वान नहीं। लोग किताब भी पढ़ते हैं तो बस में, सफर में। आपकी तरह वक्त कोई जाया नहीं करता। लिए सो बैठ गए मुँह पर किताब रखकर। मेरी मम्मी कहती है - किताब खोलकर तो कोई भी बैठ जाए, सबसे मौज का काम है। पता नहीं आनंद मोहन कैसे अफसर हैं - न जीप, न कार, न कोई नौकर-चाकर।

मेरे दिमाग में बहस छिड़ गई है। तो मैं क्या डाका डालूँ? दीवाली पर उनसे डिब्बे के लिए अनशन कर दूँ?

'मेरा मतलब यह नहीं है। हर आदमी का कुछ स्टेट्स, कुछ रौब होता है।'

'हाँ, होता है। तब, जब उन्हें लगे कि एक डायरी के बदले कितना सेल्स टैक्स चोरी किया जा सकता है, कि एक मिठाई के डिब्बे से कितने खतरनाक कामों से साहब की निगाह बचाई जा सकती है - मुझसे ये नहीं हो सकता।'

'तो ये कहिए। आदमी फिर अपने को समझे भी नहीं। लोग जाने क्या समझते हैं?' आज इतने दिन हो गए, कुछ हुआ सुशील के काम का? उस दिन गाँव का एक आदमी आया था। साफ कह गया। आप उसके पत्र का तो जवाब देते ही। बेचारा आपसे तभी से उम्मीदें लगाए बैठा है। कह रहा था कि मणि दीदी से एक बार फिर कहना। मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गई।

'नहीं हुआ तो मैं क्या करूँ? जो भी जानने वाले थे, सभी से कह कर देख लिया, मैं और इससे ज्यादा क्या कर सकता हूँ। आज उसके लिए पत्र भी लिख लिया है।'

'पोस्ट कर दिया।'

तुम्हारी परमिशन के बिना कर देता? देख लो कुछ जोड़ना-घटाना हो तो?

'मुझे क्या जोड़ना-घटाना है,' कहते हुए उसने पत्र की तह खोल ली।

'प्रिय सुशील - तुम्हारा पत्र कल ही पढ़ने को मिला। कल ही टूर से वापस आया हूँ। मणि भी साथ ही थी।'

'अच्छा। उसने मेरी ओर घूर कर देखा - क्या विलायत गए थे? शाबास धर्मराज के।'

'पहले पढ़ लो, जो कुछ बोलना है बाद में कह लेना।'

'यह भी कोई लिखने की बात है कि 'मैं कोशिश कर रहा हूँ।' कोशिश तो आप पिछले तीन साल से कर रहे हो - हुआ कुछ? उसे बेकार झाँसा क्यों देते हो? कुछ दिन बाद कह दोगे कि तुम ओवरएज हो गए। और ये क्या कि गाँव में कोई विशेष काम-वाम न हो तो आ जाओ। दो-चार जगह जाओगे-आओगे तो काम हो ही जाएगा।' काम क्या तुम्हारे देवता कर देंगे जी। घर में जगह है रहने की, जैसे-तैसे गुजर कर रहे हैं। ऊपर से ये खर्च और। मुझसे नहीं होती किसी की चाकरी अब। दो साल आपका भाई रह कर गया है, अब किसी तीसरे को बुला लो। सारी उम्र इसी में जुते रहो। कोई नौकरी है तो लिखो, वरना यह सब कुछ लिखने की जरूरत नहीं है। समझे। कह कर उसने पत्र वापस कर दिया।

'तो जो आपको लिखना हो वह लिख दो।' जवाब तो तुम भी लिख सकती हो।

'मुझे क्या पता। मेरे पास यही एक काम नहीं है। ...लिख दो कि मेरी यही औकात है बस; और क्या?'

मैंने पत्र को मोड़कर फाड़ दिया। ठीक है, जब तीसरी चिट्ठी आएगी तब देखा जाएगा। लिखो तो मेरी बला से, न लिखो तो...।

https://www.hindiadda.com/tisari-chitthi/